भारत में साफ पानी - संभावनाएं व समस्याएं

एस.एन. गुरू राव

नए प्रस्तावित बांधों के विपरीत मौजूदा बांधों का पर्यावरण सुपरिचित है। इनमें पानी प्रवाह का पैटर्न भी ज्ञात है। ये सभी एक दशक से भी ज़्यादा समय से कार्यरत हैं। यानी इनका आधुनिकीकरण निश्चितता के दायरे में है और पैसे की ज़रूरत का सटीक अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे करीब 3000 बांध मौजूद हैं। इनमें सुधार करके 25-30 प्रतिशत अतिरिक्त लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। वैसे भी मौजूदा परियोजनाओं का पुनर्वास करना कहीं ज़्यादा लाभदायक होगा और यह पर्यावरण की दृष्टि से भी उपयुक्त होगा।

जल ही जीवन है। पानी का कोई विकल्प नहीं है। हाल के वर्षों में तेल संकट ने मध्य-पूर्व में टकराव को जन्म दिया। मगर इसी इलाके में मीठे पानी का अभाव इस टकराव को नए आयाम दे रहा है। इस्राइल ने योजना बनाई है कि भूमध्य सागर के पानी को गाज़ा पट्टी से होकर मोड़ेगा और पेजयल व सिंचाई के काम में लाएगा। उससे पहले पानी को लवण मुक्त किया जाएगा। ज़ाहिर है पानी जैसे महत्वपूर्ण संसाधन के लिए संघर्ष बढ़ेगा, गहरा होगा। पानी की चुनौतियों का सामना करने के लिए ज़रूरी है कि हम एक ऐसा स्वस्थ माहौल तैयार करें जहां इन चुनौतियों का सामना करने की तैयारी हो।

मध्य-पूर्व इलाके के विपरीत भारत में मीठा पानी प्रचुरता से उपलब्ध है। हिमालय, विंध्य, पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट मानसूनी बरसात के मार्ग में खड़े हैं। इनकी बदौलत मानसून की छोटी-सी अवधि में नदियां उफान पर होती हैं। मगर सभ्यताओं ने इस प्रचुरता का लाभ नहीं उठाया और लगातार बाढ़ व अकाल की परिस्थिति में जीवित रहीं। सवाल है कि क्यों?

ऐसा नहीं है कि लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। किया तो काफी कुछ गया मगर स्थानीय राजाओं और सामुदायिक नेतृत्व के रवैयों के अनुसार अलग-अलग प्रयास ही हुए। मसलन, प्रायद्वीपीय भारत में सैकड़ों-हज़ारों सिंचाई टैंक बने, विजयनगर साम्राज्य में छोटे-छोटे बांध बने, राजस्थान में जलसमुद्र जैसे निर्माण हुए, कर्नाटक व तमिलनाडु में सैकड़ों अनिकट बनाए गए। ब्रिटिश राज के दौरान कई सारे निर्माण हुए जो बांध-इंजीनियरी के प्रतिमान बने। जैसे, पंजाब और मद्रास प्रेसिडेंसी में नहर तंत्र, कर्नाटक में परिकानिवे बांध और उड़ीसा में भवानीपट्टन बांध वगैरह। ये ढांचे आज भी देश की सेवा कर रहे हैं। दरअसल, इन्हीं कार्यों ने नदियों के जल वैज्ञानिक अध्ययन और जलाशय निर्माण के मापदण्ड तैयार किए थे। इन्हीं के आधार पर नदियों को बांधने, बराज बनाने, निकास द्वार बनाने तथा नहर तंत्र निर्माण के इंजीनियरिंग पहलुओं के फैसले हुए।

जल संसाधन

ज़मीन व जल संसाधन पर्यावरण की दृष्टि से परस्पर जुड़े हैं। भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल 32.83 करोड़ हैक्टर है। इसमें से 56 प्रतिशत यानी लगभग 18.6 करोड़ हैक्टर खेती

योग्य है। 1990 में नेट कृषि क्षेत्र 14.1 करोड़ हैक्टर था। खेती योग्य क्षेत्र में और वृद्धि की अब कोई गुंजाइश नहीं है। उल्टे, औद्योगिकीकरण में काफी सारी खेती योग्य ज़मीन खप जाती है। इसके अलावा शहरीकरण का असर भी खेती योग्य ज़मीन पर पड़ता है। यह विकास की एक कीमत है और इसका असर पानी की उपलब्धता पर भी पड़ता है।

केंद्रीय जल आयोग द्वारा 1998 में प्रकाशित पुस्तिका *'वॉटर रिसोर्स इन इंडिया'* के अनुसार देश में जल संसाधन

1. कुल सतही जल संसाधन	1880 किलोक्यूबिक मीटर
2. उपयोगी सतही जल संसाधन	690 किलो क्यूबिक मीटर
3. वास्तव में उपयोगी भूजल संसाधन	418 किलो क्यूबिक मीटर
4. कुल उपयोगी जल संसाधन	1108 किलो क्यूबिक मीटर

युरोप व यू.एस.ए. जैसे अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में जल संसाधन प्रचुर मात्रा में हैं। मगर गौरतलब बात है कि हमारे यहां पानी के वितरण में भौगोलिक व मौसमी विविधताएं हैं। कर्नाटक, राजस्थान, गुजरात व तटवर्ती उड़ीसा/आंध्रप्रदेश में काफी बड़ा क्षेत्र सूखा या अर्द्ध-सूखा है। दरअसल कर्नाटक का तो 79 प्रतिशत भाग अर्द्ध-सूखा है। यह राजस्थान को भी पीछे छोड़ देता है। यह एक मुश्किल समस्या है क्योंकि विकास के लिए मीठा पानी ज़रूरी है। इस क्षेत्र के लिए विशेष एक्शन प्लान की ज़रूरत है। यदि इस समस्या को अनदेखा किया गया तो उसी तरह की समस्याएं उभरने की आशंका है जैसी चंबल घाटी विकास से पहले चंबल घाटी में थीं। वास्तव में चंबल घाटी के हालात किसी राजनैतिक शांति प्रयास से नहीं सुधरे हैं। चंबल नहर के साथ भिण्ड और मुरैना ज़िलों में जो समृद्धि आई, उसका सुफल है यह। इस नहर में बहने वाले 30,000 क्यूसेक पानी ने चंबल घाटी का नज़ारा बदल दिया है।

संसाधन विकास

उपयोग के काबिल कुल जल संसाधन 1110 किलो क्यूबिक मीटर माना जा सकता है (देखें तालिका)। राष्ट्रीय जल नीति (1987) का बुनियादी सिद्धांत इस पानी के संरक्षण का है। इसका आशय है एक उपयोगी वस्तु का संरक्षण। यह उल्लेख किया जा सकता है कि यू.एस.ए. में भी लगभग इतना ही पानी उपलब्ध है और वहां जल भण्डारण की 7 करोड़ हैक्टर मीटर क्षमता का निर्माण किया जा चुका है। यह भारत में संभावित अंतिम जल भण्डारण क्षमता का 230 प्रतिशत है। फिलहाल हमारे देश में निर्मित जल भण्डारण क्षमता कुल संभावित क्षमता का 50 प्रतिशत है। सोवियत संघ में 11.2 करोड़ हैक्टर मीटर की जल भण्डारण क्षमता है। भारत के बराबर जल संसाधन वाले यू.एस.ए. में 40,000 बड़े बांध हैं जबकि हमारे यहां फिलहाल 3000 बड़े बांध हैं तथा करीब 700 निर्माणाधीन हैं। कहने का मतलब यह है कि हमें पानी का उपयोग करने के ढांचों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

बांधों के असर

पिछले एक-दो दशकों में बड़ी परियोजनाओं के असर को लेकर जागरूकता बढ़ी है। यह पूरी दुनिया में हुआ है। विकसित देशों में, खासकर यू.एस.ए. में बांध निर्माण थम गया है। युनाइटेड स्टेट्स ब्यूरो ऑफ रिक्लेमेशन को जल प्रबंधन व मौजूदा परियोजनाओं की निगरानी की दृष्टि से अपने संगठनात्मक स्वरूप में आमूल परिवर्तन करना पड़े हैं। इसके फलस्वरूप जल नियोजन, संसाधन उगाही और विशिष्ट निर्माण उद्योग के सम्बंध में काफी अनुभव संकलित हुआ है। वित्तदाताओं ने भी समूह बनाए हैं और आज तीसरी दुनिया की परियोजनाओं के लिए कहीं अधिक पैसा उपलब्ध है। दक्षिण अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका और चीन इस अनुभव व पैसे के उपयोग के मैदान बन गए हैं। चीन ने मशहूर 'थ्री गॉर्जेस बांध' का निर्माण हाथ में लिया। इस परियोजना की व्यावहारिकता का अध्ययन कनाडा की इंजीनियरिंग कम्पनियों (एकर्स इंटरनेशनल, बी.सी.हायड्रो इंटरनेशनल, क्यूबेक इंटरनेशनल, एस.एन.सी.) ने संयुक्त रूप से किया। इन सबने जल्दी-से-जल्दी बांध बनाने की

सलाह दी। इस अध्ययन के लिए पैसा कनाडियन इंटरनेशनल एड एजेन्सी (सीडा), विश्व बैंक और चीन के जल संसाधन व बिजली मंत्रालय ने दिया। यह अध्ययन पूरा नहीं हुआ था, खासकर पर्यावरण और पुनर्वास का अध्ययन तो हुआ ही नहीं। 1989 में तिएनमन चौक के संघर्ष के बाद चीन ने इस परियोजना को रोक दिया था।

गौरतलब है कि इंटरनेशनल वॉटर ट्रायबूनल के जूरी ने पाया था कि इसमें जलग्रहण क्षेत्र उपचार तथा आपदा प्रबंधन योजना पर ध्यान नहीं दिया गया था और विस्थापित आबादी का ज़िक्र तक नहीं किया गया था। जूरी का विचार था कि "यह अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय फण्डिंग प्राप्त करने हेतु परियोजना को उचित ठहराने की मंशा के साथ ही शुरू किया गया था, इसलिए इसमें बांध की वजह से होने वाले इकॉलॉजिकल संकट व सामाजिक-आर्थिक जोखिम पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया।" अलबत्ता अब यह परियोजना पूरे जोशोखरोश से बनाई जा रही है। भारत में भी हम इस तरह की समस्याओं से नावाकिफ नहीं हैं।

आशय यह है कि पानी का दोहन करने में उथल पुथल होती है। इस सम्बंध में काफी संवेदनशीलता उत्पन्न हुई है। नतीजतन अब ऐसे कई पहलुओं का अध्ययन किया जाने लगा है जिन पर पहले ध्यान ही नहीं दिया जाता था। इस संवेदनशीलता को उभारने में सत्तर के दशक में चले साइलेंट वैली आंदोलन और चिपको आंदोलन ने अहम भूमिका निभाई है। इसे नर्मदा बचाओ आंदोलन विस्तार दे रहा है।

अब नर्मदा बांध संकुल और टिहरी परियोजना घोंघा चाल से आगे बढ़ रहे हैं। एक स्वतंत्र जांच दल द्वारा किए गए अध्ययन (ब्रेडफोर्ड मोर्स रिपोर्ट) ने सरदार सरोवर परियोजना अधिकारियों और विश्व बैंक दोनों को लताड़ा था। इस रिपोर्ट के मुताबिक "सरदार सरोवर परियोजना के पर्यावरण पक्ष का इतिहास उल्लंघनों का इतिहास है। पर्यावरणीय समस्याओं की प्रकृति व विशालता और उनके समाधान उपेक्षित रहे हैं। जहां तक पुनर्वास व पुनर्स्थापन का सवाल है, इसने हमारी जांच को कठिनाई में डाल दिया है। अपनी रिपोर्ट पूरी करने के लिए हमें इकॉलॉजी सम्बंधी बुनियादी जानकारी तक इकट्ठी करनी पड़ी ताकि परियोजना के अपस्ट्रीम, डाउनस्ट्रीम व कमान क्षेत्र में संभावित प्रभावों को समझा जा सके। दरअसल यह काम परियोजना मंजूर होने से पहले अन्य लोगों द्वारा कर लिया जाना चाहिए था।"

यही हाल टिहरी परियोजना का भी है। यहां भी एक बौद्धिक उपेक्षा नज़र आती है। जो लोग आर्थिक विकास और पर्यावरण के संरक्षण के प्रति सरोकार रखते हैं उन्हें एक समुचित डैटाबेस तैयार करना चाहिए और पर्यावरण अध्ययन की एक सर्वमान्य पद्धति विकसित करनी चाहिए। इसके ज़रिए परियोजनाओं के प्रभावों का आकलन वस्तुनिष्ठ व पूर्वाग्रहों से मुक्त ढंग से किया जा सकेगा। यह भी ज़रूरी है कि इस संदर्भ में एकत्रित सारी जानकारी परियोजना के क्रियान्वयन से पहले जनता के सामने रखी जाए।

यहां सरदार सरोवर नर्मदा बांध शृंखला के बुनियादी तथ्यों को स्मरण करना मुनासिब है। ये विशाल परियोजनाएं शुरू होने से पहले नर्मदा एकमात्र प्रमुख नदी थी जिसका दोहन नहीं किया गया था। इन परियोजनाओं की व्यावहारिकता के अध्ययन तीन दशक पहले शुरू हुए थे। आगे चलकर विश्व बैंक के सहयोग से निर्माण कार्य शुरू हुआ। नर्मदा परियोजना के अन्तर्गत 30 बड़े, 135 मझोले और 3000 छोटे बांध प्रस्तावित हैं। ये नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर बनाए जाएंगे। इस परियोजना का भौगोलिक विस्तार बहुत बड़ा है। सरदार सरोवर से ऊपर प्रस्तावित बांधों को देखते हुए यह सवाल स्वाभाविक है कि इस बांध को पर्याप्त पानी मिल पाएगा या नहीं। दरअसल इसके दो विशाल बांधों के मद्देनज़र पूरी घाटी में होने वाले प्रभावों का फिर से आकलन ज़रूरी है।

जो लोग आर्थिक विकास और पर्यावरण के संरक्षण के प्रति सरोकार रखते हैं उन्हें एक समुचित डैटाबेस तैयार करना चाहिए और पर्यावरण अध्ययन की एक सर्वमान्य पद्धति विकसित करनी चाहिए। इसके ज़रिए परियोजनाओं के प्रभावों का आकलन वस्तुनिष्ठ व पूर्वाग्रहों से मुक्त ढंग से किया जा सकेगा। यह भी ज़रूरी है कि इस संदर्भ में एकत्रित सारी जानकारी परियोजना के क्रियान्वयन से पहले जनता के सामने रखी जाए।

मौजूदा बांधों का पुनर्वास

विशाल परियोजनाओं के व्यापक प्रभावों को देखते हुए यह ज़रूरी लगता है कि वर्तमान में जो जलाशय व पनबिजली सुविधाएं हैं उनकी विशेषज्ञों द्वार समीक्षा करवाई जाए ताकि इनके ज़रिए पानी व ऊर्जा क्षेत्र को सुदृढ़ किया जा सके।

ग्रामीण लोग जल संरक्षण के प्रति ज़्यादा सचेत होते हैं। सूक्ष्म वाटरशेड विकास में उनकी भागीदारी इसका प्रमाण है।

नए प्रस्तावित बांधों के विपरीत इन मौजूदा बांधों का पर्यावरण सुपरिचित है। इनमें पानी प्रवाह का पैटर्न भी ज्ञात है। ये सभी एक दशक से भी ज़्यादा समय से कार्यरत हैं। यानी इनके संदर्भ में हमें अटकलें लगाने की ज़रूरत नहीं है। इनका आधुनिकीकरण व सुरक्षा निश्चितता के दायरे में है और पैसे की ज़रूरत का सटीक अनुमान लगाया जा सकता है। इनमें विकास का काम चरण-दर-चरण होगा। ऐसे करीब 3000 बांध मौजूद हैं। इनमें सुधार करके 25-30 प्रतिशत अतिरिक्त लाभ मिल सकते हैं। वैसे भी मौजूदा परियोजनाओं का पुनर्वास करना कहीं ज़्यादा लाभदायक होगा और यह पर्यावरण की दृष्टि से भी उपयुक्त होगा।

गरीबी उन्मूलन

गरीबी का उन्मूलन तथा ग्रामीण लोगों की उन्नति तभी संभव है जब पानी और ज़मीन के विकास का काम साथ-साथ किया जाए। खदान उद्योग देश भर में खेती व जंगल की ज़मीन का विनाश करके भयानक नुकसान कर रहा है। इसकी वजह से मिट्टी का अपरदन हो रहा है और नदी-नालों पर प्रतिकूल असर हो रहे हैं। काफी मात्रा में मिट्टी नदियों में पहुंच रही है। तमाम बांधों व जलाशयों में मिट्टी भरती जा रही है। कर्नाटक में तुंग और भद्रा तथा उड़ीसा की नदियां इसके कुछ उदाहरण हैं।

यह भी ज़रूरी है कि नदी घाटियों में खनन के लिए प्रयुक्त ज़मीन की मात्रा की एक अधिकतम सीमा तय की जाए। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि विषैले पदार्थ बगैर उपचार के नदी-नालों में न छोड़े जाएं। फिलहाल तो अधिकांश उद्योग यही करते हैं। पिछले 50 वर्षों में टिम्बर लॉबी ने 5 करोड़ हैक्टर जंगल का सफाया किया है। यह जलाशयों के लिए की गई वृक्ष कटाई के अतिरिक्त है। दूसरी ओर देश की सारी सिंचाई परियोजनाओं ने करीब 20 लाख हैक्टर जंगल का उपयोग किया है या उसका विनाश किया है।

गौरतलब है कि ग्रामीण लोग जल संरक्षण के प्रति ज़्यादा सचेत होते हैं। सूक्ष्म वाटरशेड विकास में उनकी भागीदारी इसका प्रमाण है।

हाल ही में सूखा राहत के बहाने गंगा-कावेरी को जोड़ने का प्रस्ताव रखा गया है। इस संदर्भ में यह और भी ज़रूरी हो जाता है कि प्रत्येक नदी घाटी की उसके अपने सामाजिक भौगोलिक परिवेश में छानबीन की जाए। यह स्थापित किया जाना चाहिए कि क्या एक-सी भूसंरचना वाली नदी घाटियों में सामूहिक रूप से जल संसाधन विकास की बात नहीं की जा सकती। इससे सूखाग्रस्त इलाकों को राहत मिलेगी। मगर ऐसी योजनाओं का विस्तृत अध्ययन किया जाना चाहिए और योजना आयोग के सामने रखा जाना चाहिए। *(स्रोत विशेष फीचर्स)*